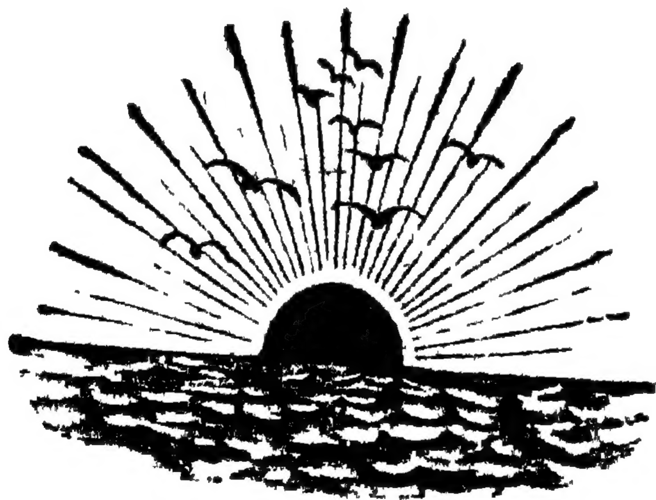
अनावश्यक

दि० जैन मूर्ति-पूजा पर

४० प्रश्न



लेखक—

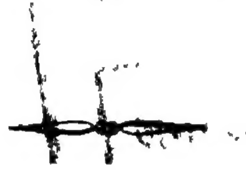
"पुष्पेन्दु" जैन

वन्दे श्रीगुरुतारणम ॥



अनावश्यक दि० जैन मूर्तिपूजा पर

४० प्रश्न



लेखक-प्रकाशक

" पुष्पेन्दु " जैन

नागपुर सिटी

प्रथम वार १०००

श्रीतारण सं० ४२५ ता० २०-१०-४०

मूल्य समाधान

Printed by:—

Ajit Kumar Jain Shastri.

Prop:-Aklank Press Multan City.

निवेदन



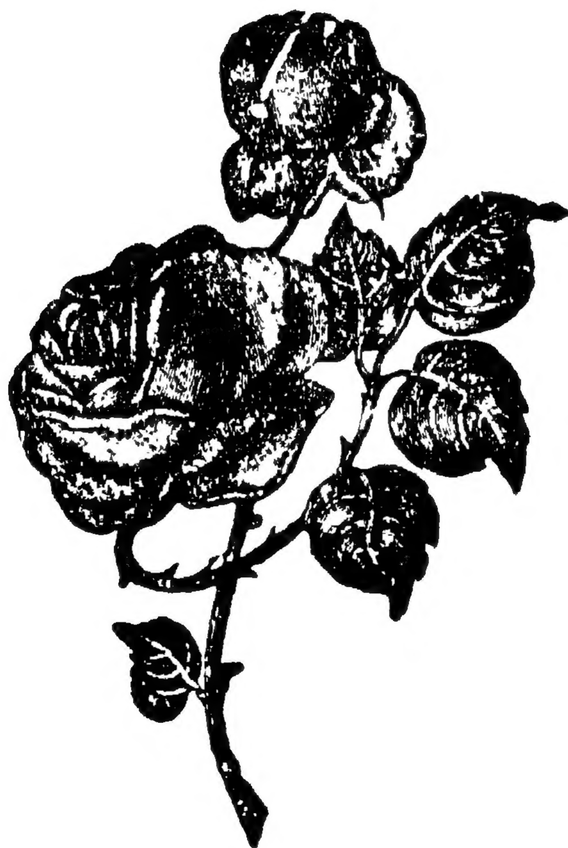
तारण समाज तथा मूर्ति-पूजक दि० जैन समाज में सदियों से दि० जैन मूर्ति-पूजा विषय पर नाना प्रकार के वितण्डावाद स्वरूप प्रश्नोत्तर हुआ करते थे, किन्तु निर्णय कुछ भी हाथ नहीं लगता था।

अच्छा हुआ जो इस समय दोनों समाजों के बीच लिखित शास्त्रार्थ हो रहा है। मैंने भी सोचा कि अच्छा हो इस समय मैं भी अपने कुछ प्रश्नों का समाधान मूर्ति-पूजक दि० जैन विद्वानों से करा लूं, बस एक मात्र इसी इच्छा से प्रेरित होकर यह प्रश्न उपस्थित किये हैं।

आशा है कि मेरे प्रश्नों का सप्रमाण उत्तर दि० जैन मूर्ति-पूजक समाज के विद्वान देकर अनुगृहीत करेंगे।

विनीत—

" पुष्पेन्दु "





वन्दे श्रीगुरुतारणम् ॥

अनावश्यक दि० जैन मूर्तिपूजा पर

४० प्रश्न



१– मूर्ति पूजन का सम्बन्ध पूज्य से है, या पूजक से ? या दोनों से ?

२– मूर्ति-पूजक दि० जैन समाज की ओर से यह कहा जाता है कि "सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ" अर्थात् प्रतिमापूजन में थोड़ा पाप होता है किन्तु पुण्य की राशियां लग जाती हैं, जब ऐसा है तो क्या जिनेन्द्र देव ने लेश मात्र सावद्य क्रिया करके

पुण्यराशि को लूटने की आज्ञा अपने मुखारविंद से स्वयं ही दी है, तो क्या जिनेन्द्र देव अपने सर्वज्ञ-पद से पाप क्रिया करने का उपदेश दे सकते हैं ? चाहे वह पाप लेश हो या विशाल हो किन्तु जिनेन्द्र देव सावद्य क्रिया का उपदेश कदापि नहीं कर सकते। यदि पाप क्रिया करने का उपदेश जिनेन्द्र स्वयं दे सकते हैं, तो हमारे मूर्ति पूजक भाइयों को यह बात प्रामाणिक ग्रन्थों से सिद्ध करनी चाहिये। तथा यदि जिनेन्द्र देव के वचन बिलकुल निर्दोष ही होते हैं, तो फिर इस "मूर्ति पूजन की वृथा की आज्ञा जिनेन्द्र देव की नहीं है" ऐसा दृढ़ श्रद्धान करके उक्त बन्धु जिनेन्द्र आज्ञा-नुसार जैन धर्म का पालन करें, तभी उनका कल्याण हो सकता है।

३– जो पुण्य और पाप दोनों से विरक्त होगा वही आत्म कल्याण का वास्तविक मार्ग पा सकेगा, किन्तु इससे उल्टा जो थोड़ा पाप करके बहुत सी

पुण्यराशि लूटने की फिक्र में रहेगा, वह क्या आत्म-कल्याण करेगा ? तथा जैनधर्म का तो सिद्धान्त यही है कि पुण्य पाप के चक्कर में नहीं पड़ने वाला सम्यग्दृष्टि ही मोक्ष मार्ग का पथिक है, हां उदय में आये कर्मफल को उसे भोगना यह बात तो दूसरी ही है। जब प्रारंभिक सम्यग्दृष्टि पद में ही जिनेन्द्र की शिक्षा है कि सम्यग्दृष्टि वही है जो 'जल में भिन्न कमलवत' संसार में रहे, जो इस तरह के अंतरंग में सम्यग्दर्शन दीपक के प्रकाश से युक्त होगा क्या उसे पुण्यराशि लूटने का चाव हो सकता है ? उसे तो यह उपमा देंगे कि—

चक्रवर्ति की संपदा इन्द्र सरीखे भोग,
काकबीट सम लखत हैं सम्यग्दृष्टी लोग।

जब ऐसी बात है तो फिर आत्मरस का दीवाना वह सुदृष्टि (पुण्य और पाप को एक निगाह से देखने वाला) मूर्ति पूजा के प्राप्त होने वाली पुण्य राशि जो कि—'सुकृतमपि समस्तं भोगिनां

भोगमूलं" (यह समस्त पुण्य भी भोगों का मूल है) उसे क्योंकर लेने का लोभ करेगा और अपना समय व्यर्थ व्यतीत क्यों करेगा। इससे सिद्ध हुआ कि सम्यग्दृष्टि को पुण्य की चाह नहीं, तथा पुण्य चाहने वाला सम्यग्दृष्टि नहीं, तब मूर्तिपूजा से पुण्य लाभ सिद्ध करके हमारे मूर्ति पूजक भाई पुण्य चाहने वाले मिथ्यादृष्टियों को ही अपनी मूर्ति पूजा के आडंबर जालमें फंसा सकते हैं, यह बोझ सम्यग्दृष्टि के सिर पर तो लद ही नहीं सकता। इतने पर भी क्या हमारे मूर्ति पूजक-भाई सम्यग्दृष्टि के कर्तव्य में मूर्ति-पूजा को खींचतान कर प्रविष्ट कर सकते हैं ?

४- आज कल जो भारतवर्ष में दि० जैन मूर्तियां विद्यमान हैं क्या वे तदाकार हैं या अतदाकार हैं। क्या आंख, कान, नाक, हाथ, पैर, आदि बना देने से ही तदाकार मूर्ति हो जाती है। या मूर्तिमान के समान ही आकार वाली (हूबहू) मूर्ति

तदाकार हो सकती है, क्या हमारे तीर्थङ्कर आज कल की मूर्तियों जैसे ही, उस समय थे।

यदि नहीं तो फिर यह मूर्तियां तदाकार कैसे हो सकती हैं ? तथा अतदाकार से फिर तदाकार का ज्ञान भी कैसे हो सकता है ?

५– प्रतिमा पूजन में जो आरंभ जनित हिंसादि पाप होते हैं। उनका फल किस प्रकार का (या कौनसा) मिलता है क्या कहीं शास्त्रों में उस पाप के फल का भी भोगने का वर्णन दिया है या नहीं ?

६– खण्डित मूर्तियों को आप द्रव्य निक्षेप की अपेक्षा पूज्य मानकर उनकी पूजा क्यों नहीं करते हैं।

७– द्रव्य निक्षेप की अपेक्षा क्या संसार के समस्त पाषाण या पहाड़ आदि भी आप के द्वारा पूज्य हो सकते हैं ? क्योंकि संभव हैं इनके परमाणु कभी प्रतिमा रूप रहे हों या आगे प्रतिमा रूप बन जावें ?

८– स्थापना निक्षेप से जैसे पाषाण आपके द्वारा पूज्य हो सकता है। क्या नाम निक्षेप द्वारा भी उसी

प्रकार कोई जीवधारी या पुद्गल पूज्य हो सकता है जैसे "जैनेन्द्र देव" नाम का व्यक्ति आपके द्वारा पूज्य है या अपूज्य। यदि अपूज्य है तो क्यों। उसकी भी मूर्ति के समान ही नाम निक्षेप की अपेक्षा से पूजा कर लेने में आप को कौनसा पाप लगेगा। और स्थापना निक्षेप से एक पाषाण को पूज लेने में कौनसा पुण्य लगेगा, ज़रा खूब खुलासा करें।

९- मूर्ति में एक साथ कितने निक्षेपों को मानकर आप उसकी पूजा करते हैं ?

१०-प्रतिमा पूजन में आप भाव निक्षेप का भी आह्वान करके उसे वहां स्थान देते हैं, या विसर्जन करके विदा कर देते हैं। भाव निक्षेप की अपेक्षा मूर्ति पूज्य है वा अपूज्य ?

११-स्थापना निक्षेप का मोक्षमार्ग से क्या संबंध है। क्या बिना स्थापना निक्षेप के कोई मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकेगा ?

१२–स्याद्वाद के सप्तभंगों में से कौनसे भंग द्वारा आप मूर्ति-पूजा को जिनेन्द्र प्रतिपादित सिद्ध कर सकते हैं ?

१३–सप्तभंगों में से कौन सी भंग द्वारा आप मूर्ति-पूजन में जिनेन्द्र का आह्वान आदि करके बुलाते बिठाते हैं आप का मनमाना स्याद्वाद क्या मुक्तजीवों को यहां बुलाकर साक्षात्कार करा देने की भी शक्ति रखता है या मनमाना ही है ?

१४–आप किस नय की सिद्धि करने के लिये किस नय के द्वारा मूर्ति-पूजन करके अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त करते हैं जिनागम की साक्षी से उसी के अनुकूल बतावें ?

१५–मूर्ति-पूजन करते समय किन कर्मों का आस्रव, बंध होता है ? तथा किन २ कर्मों की निर्जरा होती है ?

१६–यदि मूर्ति-पूजन करते समय वहां के पंचेन्द्रियों को लुभाने वाले सामान से मूर्ति पूजक का मन लुभा

जावे तो उसे कौनसे पाप का बंध होकर कौनसी गति मिलेगी ?

१७-मूर्ति-पूजन में खूब राग रंग की जरूरत है या वीतरागता की ? यदि वीतरागता की जरूरत है, तो फिर पेटी, तबले पर पूजन किसको खुश करने के लिये की जाती है इसमें भी पुण्य है या पाप?

१८-अपने मनोनीत वीतरागियों के सामने रागयुक्त क्रियायें करना उन वीतरागियों की अवज्ञा है या उनका ही आज्ञापालन ?

१९-भक्त, भक्तिरस में कौन २ से कार्य अपने भगवान के प्रति करने का अधिकारी है। या मनमानी भी करके भक्त कहा जा सकता है ?

२०-समवशरण आदि के माड़नों के धुले हुये चावलादि जब तक माड़ने का विसर्जन न हो तब तक क्या प्रासुक ही रहते हैं ? कौन कौन २ से माड़नों को कितने २ दिन रखा जाता है ?

२१-पंच कल्याणक प्रतिष्ठा, गजरथ आदि में "सावद्य

लेशो बहुपुण्यराशौ" के अनुसार पाप अधिक होता है ? या पुण्य, या बराबर बराबर।

२२–आप की दि० जैन सम्प्रदाय की मूर्ति-पूजन सम्बंधी कौन २ सी व कितनी क्रियाएं हिन्दू सम्प्रदाय आदि की मूर्ति-पूजन से मिलती जुलती हैं ?

यदि अधिकांश क्रियायें समान हैं तो फिर बताइये आपने उनकी नकल करके अपनी मूर्ति-पूजा कायम की, या उन्होंने आपकी नकल करके अपनी मूर्ति-पूजा कायम की ?

२३–स्वामी दयानंद जी के सत्यार्थ प्रकाश में जो यह निम्न लिखित प्रश्नोत्तर पृष्ठ ३२८ पर लिखे हैं। क्या ये सत्य हैं या झूठ ?

प्रश्न—मूर्ति-पूजा कहां से चली ?

उत्तर—जैनियों से।

प्रश्न—जैनियों ने कहां से चलाई ?

उत्तर—अपनी मूर्खता से।

आदि २। यदि यह उक्त प्रश्नों के उत्तर झूठ हैं तो फिर आपने सत्यार्थ प्रकाश को मानने वालों के सामने उनको निरुत्तर करने वाला कौन सा प्रमाण पेश किया ?

२४-जिस चीज को श्रावक छूने में भी आगम के अनुसार पाप समझता है उन चीजों का पूजनादि में उपयोग करना क्या मोक्षमार्ग है? जैसे गोरोचन कस्तूरी आदि ?

२५-यक्ष, यक्षिणी, क्षेत्रपाल, देवी, देवता, नवग्रह आदि की पूजन करना क्या जैन सिद्धान्त के अनुकूल है ?

२६-मूर्ति में आह्वान करने पर जब देव आ जाते हैं और उनकी पूजनादि करने से आपको वह स्वर्गीय आनंद प्राप्त होता है तथा आप इन्द्र तक भी बन जाते हैं, जिसके आनंद का पारावार नहीं तब कुछ समय के बाद ही, भगवान का अपने हाथों विसर्जन करके आप उस आनंद से क्यों हाथ धो

बैठते हैं ? मेरी समझ से ऐसे आनंद को छोड़कर फिर संसार में संसारियों जैसी हाय २ करना वैसा ही होगा, कि जैसे कोई चिन्तामणि रत्न को पाकर उसे अपने हाथों समुद्र में फेंक दे। यदि चिन्तामणि को समुद्र में फेंक देना फेंक देने वाले की भूल या अज्ञान है तो फिर उपर्युक्त पूजन को प्रारंभ करके इन्द्र बनकर फिर संसारी बन जाने वालों की क्या बुद्धिमानी है ?

२७–जब कि आप प्रतिमा को देव कहकर पूजते हैं और उससे वीतरागता मिलती है ऐसा भी आप मानते हैं फिर आप एक गुण वीतरागत्व को मूर्ति में घटा कर केवल एक ही गुण से देव मान बैठे यह कैसा अन्धेर है जब कि आप्त का स्वरूप वीतरागीपने के साथ सर्वज्ञत्व और हितोपदेशीपना भी है तो क्या प्रतिमा में सर्वज्ञत्व और हितोपदेशी-पन भी पाया जाता है ? यदि नहीं तो फिर यह शास्त्र-विरुद्ध बात क्यों की जाती है। जैन शासन के

अनुसार देव वही हो सकता है जो वीतरागी, हितोपदेशी, और सर्वज्ञ हो। इन तीन गुणों में से एक भी कम हो वह आप्त नहीं कहला सकता है फिर मूर्ति में यह उक्त तीन गुण नहीं हैं, तो वह "देव" कैसे कहला सकती है?

२८—पञ्चकल्याणकों की प्रतिष्ठाओं में गर्भ कल्याणक के दिन भगवान को किस माता के गर्भ में लाया जाता है? वहां माता की स्थापना किसमें की जाती है? तथा पिता भी कोई उस समय माना जाता है या नहीं?

२९—प्रतिमा के कल्पित अरहन्तों को जब कि प्रतिदिन स्नान कराया जाता है, नाना प्रकार के पक्वान्न-व्यञ्जन भोजन उनको समर्पण किया जाता है, जब उक्त सांसारिक क्रियायें उनके साथ नित्य प्रति होती हैं तो फिर और भी अन्य क्रियाएं जो बाकी रह जाती हैं, वे उनके साथ की जाती हैं, या नहीं। यदि नहीं तो क्यों? तथा उक्त राग-पूर्ण क्रियाएं

होने पर भी क्या आप के कल्पित अरहंत फिर भी वीतरागी कहला सकेंगे ?

३०-इसी प्रकार महावीर जी (चान्दन गांव) में भी यह कहा जाता है कि भगवान की प्रतिमा जिस जगह जमीन में थी वहां एक गाय का दूध झर जाता था। तो वह दूध क्या वह प्रतिमा झरा लेती थी। और यह घटना सत्य है ? तो उस मूर्ति को दूध झरा लेने की क्या आवश्यकता थी, इसी प्रकार और भी अनेक अतिशय क्षेत्रों के महत्व को बताने के लिये अनेक प्रकार की कपोल कल्पनायें जो गढ़ी जाती हैं क्या उनमें से किसी एक का भी वर्तमान में सत्य-साक्षात् हो सकता है, यदि नहीं तो उक्त बातें कौनसे आधार से प्रमाण मानी जावें ?

३१-मूर्ति-पूजक भाई यह कहते हैं, कि कुण्डलपुर के महावीर स्वामी जी की प्रतिमा को जब यवन बादशाह ने खण्डित करने के हेतु अंगुली में टांकी मारी तब उसमें से दूध की धारा बह निकली, क्या

यह घटना सत्य है ? या बनाई हुई बात है। यदि सत्य है तो क्या अभी भी दूध की धारा बहाने वाली प्रतिमा आप बता सकते हैं ? या कुण्डलपुर की ही उक्त मूर्ति से दूध झरने का साक्षात्कार करा सकते हैं ?

३२–मूर्ति में आह्वान करने से जब मुक्त आत्मा उस में आ जाती है तो फिर मूर्ति सजीव होकर उपदेशादि क्यों नहीं देती ?

३३–भगवान को अपनी पूजन कराना आवश्यक है ? अथवा भक्तों को उनकी पूजन करना आवश्यक है ? यदि भक्तों का कर्तव्य नित्य पूजन करने का है तो पाली, पाली से या पुजारी रखकर भगवान की पूजा कराना श्रावक का कर्तव्य कैसा ? पाली से अथवा पुजारी द्वारा पूजन कराना, इससे तो यही मालूम होता है कि पूजन करना श्रावकों का कर्तव्य नहीं किन्तु भगवान अपनी पूजन नित्य नियम से किसी के भी द्वारा करा लेना चाहते हैं।

तब क्या किसी दिन भगवान को मूर्ति-पूजा न होने से भगवान का उस दिन नुक्सान या अपमान समझा जावे ?

३४–निश्चय नय से मूर्ति पूज्य है या अपूज्य ?

३५–व्यवहार नय से मूर्ति पूज्य है या अपूज्य ?

३६–यदि व्यवहार नय से मूर्ति पूज्य है तो आप मूर्ति को मूर्ति समझ कर पूजते हैं या और कुछ ? यदि आप मूर्ति को मूर्ति समझ कर पूजते हैं तो पाषाण पूजन से क्या लाभ ? तथा यदि मूर्ति को भगवान समझ कर पूजते हैं तो—

'जीव अजीव तत्व अरु आस्रव-बंधरु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको ज्योंको त्यों सरधानो'॥

इस व्यवहार सम्यग्दर्शन के मुआफिक मूर्ति को भगवान मानकर पूजने से "ज्यों को त्यों सरधानो" कहां रहा ? "मूर्ति में भगवान और भगवान को मूर्ति में" इस प्रकार उल्टे सीधे व्यवहार का नाम व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है। अब व्यवहार

सम्यग्दर्शन की अपेक्षा जब मूर्ति-पूजा अनावश्यक है तो आप फिर व्यवहार वा निश्चय के अतिरिक्त कौन से तीसरे नय से मूर्ति मानते हैं ?

३७-नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ एवंभूत, इन सात नयों में से कितने नय मूर्ति के पूजक हैं ?

३८-आपने अपनी नाटक लीला, तथा कल्पना को ही धर्म का जामा क्यों पहना दिया है ? यदि नहीं तो इन सब आपकी कल्पनाओं का धार्मिकता से क्या सम्बन्ध है ? जैसे मूर्ति से भगवान का पार्ट अदा कराते हैं वैसे ही चाहे जिस स्त्री-पुरुष को इन्द्राणी और इन्द्र बना कर उनसे भी पार्ट अदा कराते हैं, आदि २ ऐसी इन सब लीलाओं का धर्म से क्या सम्बन्ध है ? यदि इन्हीं नाटक, लीला कल्पना को ही धर्म का जामा पहना दिया जावेगा तो "वत्थुसहावो धम्मो" इसे कौन पूछेगा तथा आप इसका क्या अर्थ करेंगे ? इस प्रश्न का खूब

विचार कर सप्रमाण उत्तर देने की कृपा करें।

३९—मूर्ति-पूजक दि० जैन समाज के अच्छे २ विद्वान् भी कहते हैं कि "तारणसमाज जो शास्त्र या जिन-वाणी को मानती है तो यह जिनवाणी उपासना भी मूर्ति-पूजा ही है। हम पूछते हैं जब आपने शास्त्र (जिनवाणी) मानने में तारणपंथियों को मूर्ति-पूजक ठहरा दिया तब फिर पाषाण मूर्ति की पूजा को तारणपंथियों के सिर पर लादने की व्यर्थ कोशिश आप लोग क्यों करते हैं आप तो अपने मनमें सन्तोष कर लो कि जिनवाणी उपासक तारण समाज की मूर्तिपूजा जिनवाणी—उपासना ही है। परन्तु देखते हैं कि आप को सन्तोष न होकर उल्टा क्रोध आता है और आप लोग विचारते हैं कि इन तारण-पंथियों के सिर पर भी कब यह भार लद जावे। पर अब आप ही अपने सिर पर से इस भार को दूर करने की कोशिश कीजिये।

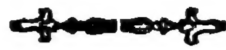
४०—"मूर्ति—पूजा" इस शब्द की व्याख्या क्या है?

मूर्ति-पूजा के मायने मूर्ति (पाषाण) की पूजा है या भगवान की। क्या मूर्ति शब्द का अर्थ भगवान या देव हो सकता है? "मूर्ति-पूजा" इस शब्द से ही साफ़ जाहिर होता है कि मूर्ति की पूजा याने पाषाण निर्मित जो प्रतिमा, मात्र उसकी पूजा।

जब यह स्पष्ट है फिर मूर्ति शब्द का अर्थ जबर्दस्ती खींचतान कर देव या भगवान क्यों किया जाता है। बात करते हैं जिनेन्द्र भगवान की और दौड़ पड़ते हैं मूर्ति की तरफ़, यह क्या तमाशा है?



लिखित-शास्त्रार्थ



सर्व सज्जनों को यह बात अच्छी तरह विदित हो चुकी है कि मूर्ति-पूजक दि० जैन समाज ने अपनी "अनावश्यक मूर्ति-पूजा" के विषय पर तारण समाज से लिखित शास्त्रार्थ करने का निश्चय कर लिया है। तदनुसार ही तारण समाज की ओर से अपना पहला वक्तव्य तारणबन्धु अंक ४ में पहुंचा दिया गया था किन्तु अफ़सोस है कि मूर्ति-पूजक दि० जैन समाज ने अपने लिखित वायदे को भी भुला दिया, तथा इन्हीं मूर्ति-पूजक समाज के पत्रों के सम्पादक अपने सम्पादकीय लेखों तक में तारणसमाज के प्रति अपने कषाय रूप विष का वमन करके अपनी योग्यता का परिचय संसार को दे रहे हैं जो मूर्ति-पूजक दि० जैन समाज लिखित बातों को भी भुलाकर इस तरह अपनी कमजोरी बता रही है, भला पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि वही समाज मौखिक शास्त्रार्थ में कहां तक सत्यता पर दृढ़ रह कर अपनी

ताकत बता सकती थी। बात तो यह है कि मूर्ति-पूजा की सिद्धि करने के लिये इनके पास कोई भी साधन नहीं है। यदि कुछ हैं तो सिर्फ मनगढ़न्त कुतर्क। भला इन कुतर्कों से कहां तक अभीष्ट-सिद्ध करके मूर्ति-पूजक समाज सफलता प्राप्त कर सकती है, इस बात को एक मामूली आदमी भी सोच सकता है।

इतने पर भी संभव है कोई मूर्ति-पूजक समाज का "माई का लाल" हमारे इन प्रश्नों के उत्तर देने का साहस कर बैठे, बस इसी लिये हमने यह अपने प्रश्न प्रकाशित किये हैं।



अनावश्यक दि० जैन मूर्ति-पूजा के विषय में जानने के लिये पढ़िये :—

१– अनावश्यक दि० जैन मूर्ति-पूजा

और

२– तारणपंथ-समर्थन (प्रथम भाग)

